International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 4; April 2017; Page No. 271-273

'आधे-अधूरे' नाटक की रंग –योजना

किरण त्रिपाठी
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

प्रस्तावना

नाटक की पूर्ण सार्थकता उसके सफलतापूर्वक मंचित होने में ही है क्योंकि नाटक न सिर्फ पाठ्य विधा है बल्कि वह दृश्यात्मक विधा भी है किसी नाटक की रंगमचीयता मूलतः इस बात से तय होती है की नाटककार का नाटक तथा रंगमंच के संबंधों के प्रति क्या दृष्टिकोण है. मोहन राकेश आधुनिक हिंदी नाटक के सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाटककार रहे हैं और उनकी रंग दृष्टि हिंदी रंगमंच के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है. उनके अनुसार महंगें रंगशालाओं की अपेक्षा साधारण रंगमंच की योजना भारतीय परिवेश और भारतीय संस्कृति के अनुरूप होनी चाहिए जो हमारी संवेदना और संवेग को अभिव्यक्त करने में सहायक हो. 'हिंदी रंगमंच के विकास से निःसंदेह यह अभिप्राय नहीं है कि अत्याधुनिक सुविधाओं से संपन्न रंगशालाएँ राजकीय या अर्धराजकीय संस्थाओं द्वारा जहाँ-तहँ बनावन दी जाएँ जिससे वहां हिंदी नाटकों का प्रदर्शन किया जा सके. प्रश्न केवल आर्थिक सुविधा का नहीं, एक सांस्कृतिक दृष्टि का भी है. हिंदी रंगमंच को हिंदी भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकाँक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा, रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त करना होगा. हमारे दैनंदिन जीवन के राग-रंग को प्रस्तुत करने के लिए, हमारे संवेदों और स्पंदनों को अभिव्यक्त करने के लिए, जिस रंगमंच कि आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं अधिक भिन्न होगा."[1]

मोहन राकेश आधुनिक परिवेश से जुड़कर साहित्य सृजन करने वाले गद्यकार हैं. इन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा के बल पर हिंदी नाटक को नवीन दिशा दी है तथा साहित्य में नए युग का सूत्रपात किया है. मोहन राकेश का जन्म ८ जनवरी १९२५ ई. को पंजाब के अमृतसर शहर में हुआ था और मृत्यु १९७२ ई. में. राकेश जी ने साहित्य के हर क्षेत्र में निबंध, नाटक, उपन्यास, कहानी, यात्रा वृतांत आदि पर अपनी लेखनी चलाई परन्तु वे नाटककार के रूप में अत्यधिक चर्चित हुए. 'नाटक की भाषा' पर कार्य करने के लिए इन्हें नेहरू फेलोशिप प्रदान की गयी. उनके नाटकों में 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे', 'अंडे के छिलके', 'अन्य एकांकी तथा बीज नाटक', 'दूध और दांत', आदि प्रमुख हैं. इनमें 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे' गहन मानवीय ट्रेजेडी को नाटकीय परिस्थितियों में रचनात्मक ढंग से आंकने वाले नाटक हैं.

'आधे-अधूरे' १९६९ ई. में रचित मोहन राकेश की तीसरी नाट्यकृति है, जिसका कथानक इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि जीवन में 'पूर्णता' की खोज असंभव है. महेंद्र नाथ और सावित्री का वैवाहिक जीवन इस नाटक में मोहन राकेश ने प्रस्तुत किया है. सभी के भीतर एक तनाव है जो इस कथा में हर जगह व्यक्त हुआ है. 'आधे-अधूरे' में विघटन की जिस प्रक्रिया को प्रस्तुत किया गया है वह व्यक्ति में, परिवार में, समाज में और देश में सर्वत्र व्याप्त है. आधुनिकता बोध इस नाटक में कई रूपों में देखा जा सकता है. युगीन परिवेश की यथार्थ अभिव्यक्ति, अस्तित्ववादी जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति इस नाटक में विद्यमान है. परिवार के सभी सदस्य अपने अस्तित्व के प्रति सजग है. लेखक यह प्रतिपादित करता है कि एक छत के नीचे रहने से परिवार नहीं बनता क्योंकि इस नाटक के सारे पात्र एक दूसरे से सुख-दुःख, आशा-आकाँक्षाओं में सहयोग नहीं करते. वे साथ रहते हुए भी एक-दूसरे के दुःख-सुख से सरोकार नहीं रखते. सबको व्यर्थता एवं रिक्तता का बोध होता है. इस नाटक का कथानक सार्वजनिक एवं सर्वकालिक होने से सदैव प्रासंगिक और कालजयी रहेगा.

किसी भी नाटक की प्रमुख विशेषता होती है- रंगमंचीयता और रंगभाषा. रंगभाषा के अंतर्गत आने वाले तत्त्व हैं- मंच - योजना, प्रकाश योजना, दृश्य योजना, निर्देश, वेशभूषा, ध्वनियोजना, संवाद, भाषा, आदि सब कुछ जो नाटक को सफल बनाते हैं तथा रंगमंच पर प्रस्तुत करने में सहायक होते हैं, जिनकी मदद से नाटक में पूर्णता आती है उन सभी का समावेश 'आधे-अधूरे' में हुआ है. 'आधे-अधूरे' कि मंच योजना बेजोड़ है. नाटक के प्रारम्भ होते ही सबसे पहले मंच हमारे सामने आता जो नाटक में वर्णित तनाव, तल्खी तथा अधूरेपन का चित्र प्रस्तुत करता है. सोफा-सेट जो कुछ टूटा हुआ है, डायनिंग टेबल, कबर्ड, ड्रेसिंग टेबल, तिपाई, मोढ़े,फटी- पुरानी किताबों का एक सेल्फ, पढ़ने की एक मेज कुर्सी, परदे, मेजपोश, पलंगपोश, आदि जर्जर हालत में दिखाई देते हैं, जो इस घर की हालत बया कर रहा है कि यह घर कभी मध्य-वित्तीय स्तर का था जो ढहकर निम्न-मध्य-वित्तीय स्तर का बन गया है. सोफे पर रखा बैग जिसमें से फटी किताबें बहार झांक रही थी, फटी हुई फोटो, बिखरे कपड़े, चाय पीने के बाद टेबल पर रखा अधटूटा टी-सेट आदि इस घर की अव्यवस्था कि ओर संकेत करते हैं. जिस स्थिति का वर्णन मोहन राकेश इस नाटक में करना चाहते है उसका वर्णन उनका यह मंच योजना कर देता है और दर्शकों को यह बता देता है कि यह नाटक एक ऐसे परिवार के बारे में है जो संपन्न से विपन्न हो गया है. इस नाटक का मंचन बंद प्रेक्षागृह तथा खुले मंच दोनों पर हो सकता है जैसा कि निर्देशक श्री ओम शिवपुरी ने कहा है- "मुझे संतोष है कि मेरा विश्वास सही साबित हुआ. बंद और खुले प्रेक्षागृह के अंतर से नाटक की प्रभान्विति पर कोई असर नहीं पड़ा."[2] अर्थात 'आधे-अधूरे' की मंच योजना सादगी से भरपूर है.

'आधे-अधूरे' में प्रकाश योजना का प्रयोग बड़े सादे ढंग से हुआ है जो दर्शकों का ध्यान किसी खास वास्तु या पात्र की ओर आकर्षित करने के लिए किया गया है, क्योंकि "बहुत सी बातें मूड, स्थितियां, नाटकीय प्रभाव केवल प्रकाश योजना से ही पैदा किये जा सकते हैं. रोमांटिक वातावरण के लिए अत्यंत करुण, विषादपूर्ण वातावरण के लिए किसी भयंकर पैशाचिक वातावरण की सृष्टि में प्रकाश ही मुख्या तत्व होगा"[3] काले शूट वाले आदमी के वक्तव्य के बाद अँधेरा होता है फिर प्रकाश कमरे के अलग-अलग कोने से होता हुआ पुरे मंच पर फ़ैल जाता है जिससे कमरे में बिखरी सभी वस्तुएं

नजर आने लगती हैं. प्रकाश योजना भी सादगी से भरी है . स्त्री और लड़के के बीच की बहस के बाद "प्रकाश आकृतियों पर धुँधलकार कमरे के अलग-अलग कोनों में सिमटता विलीन होने लगता है..... दो अलग-अलग प्रकाश वृत्तों में लड़का और बड़ी लड़की." [4] प्रकाश योजना ऐसी है जो दर्शकों का ध्यान परिस्थिति विशेष की तरफ ले जाती है, दर्शक एक पल के लिए भी अनावश्यक तत्व पर ध्यान नहीं दे पता. यह प्रकाश योजना की विशेषता है की दर्शक का ध्यान बटने न दे.

मंच सज्जा या दृश्यबंध नाटक का महत्वपूर्ण अंग होता है इसलिए इसे स्पष्ट होना चाहिए. नाटक दृश्य काव्य के अंतर्गत आता है. अतः नाटक में दृश्यों का प्रभावी होना आवश्यक है और 'आधे-अधूरे 'इस पर खरा उतरता है. मोहन राकेश की विशेषता यह है की इनके नाटकों में एक ही दृश्य होता है, इसलिए निर्देशक को बार-बार मंच को बदलने की आवश्यकता नहीं होती. सारा दृश्य मकान के बैठने के कमरे में ही दर्शाया जाता है भीतर के कमरे का जिक्र तो आता है पर वे दृश्य मंच पर उपस्थित नहीं होते. यह आर्थिक दृष्टि से भी कठिन नहीं है. जिस नाटक की दृश्य योजना पात्रो की मनःस्थति, पारिवारिक अवस्था आदि को चित्रित करने में में सक्षम हो वही सफल है. इब्राहिम अल्काजी ने भी आधे-अधूरे के दृश्य बांध की प्रशंसा की है. उनके अनुसार टूटे-फूटे फर्नीचर, दीमक लगी फाइलें, लोहे के टुकड़े, गंदे प्याले, तस्तरियाँ, पत्रिकाएं आदि सब अकेलेपैन और घुटन को बढाती है जो पत्रों के बिखरे जीवन का प्रतीक भी हैं. नाटककार ने मंचन की सहजता हेतु भी अपनी ओर से कई प्रयास किये हैं. उन्होंने अनेक अभिनय संकेतों द्वारा नाटक की सरलता में योगदान दिया है-

"पुरुष तीन*:* (जैसे बात को आत्मसात करता) हूँ.

पल-भर की ख़ामोशी जिसमें वह कुछ सोचता हुआ इधर-उधर देखता है फिर जैसे किसी किताब पर आँख अटक जाने से उठकर शेल्फ की तरफ चला जाता है."[5] पृ.

"स्त्री*:* अहाते के दरवाजे से जाकर उधर देख लेती और कुछ उत्तेजित-सी होकर लौट आती है."[6]

वेश- भूषा नाटक में चित्रित जीवन और परिवेश को ही निर्देशित नहीं करती, अपितु रंगीन अलोक में नाट्य-प्रदर्शन को प्रभावोत्पादक और सम्मोहक बनाती है. "वेशभूषा रूप-सज्जा भी नाटक के अर्थ को चरित्र की दुहरी व्यंजना को प्रकट करने में सहायक होती है. इसीलिए वेशभूषा का चयन और उपयोग रूप सज्जा भी अपने में कलात्मक कार्य है क्योंकि अभिनेता का पूरा व्यक्तित्व और नाटक के पात्र उसकी अर्थ-व्यंजना उससे सीधे प्रभावित होती है. " [7] पात्रों की वेश-भूषा उनकी मनोदशा को भी बखूबी व्यक्त करते हैं. "पुरुष एक के रूप में वेशान्तर*:* पतलून-कमीज. जिंदगी से अपनी लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिए. पुरुष दो के रूप में*:* पतलून और बंद गले का कोट. अपने आपसे संतुष्ट, फिर भी आशंकित. पुरुष तीन के रूप में*:* पतलून-टीशर्ट . हाथ में सिगरेट का डब्बा. लगातार सिगरेट पीता. अपनी सुविधा के लिए जीने का दर्शन पूरे हाव-भाव में. पुरुष चार के रूप में*:* पतलून के साथ पुरानी काट का लम्बा कोट. चेहरे पर बुजुर्ग होने का खासा अहसास. काइयाँपन. [8] 'आधे-अधूरे 'की वेश-भूषा इसके कथानक पर भी प्रभाव डालती है तथा उसे रोचक बनती है. लड़का पतलून के अंदर दबी, भड़कीली बुश्शर्ट धूल-धुलकर घिसी हुई और काले शूट वाला आदमी जिसने चार भूमिकाएं इस नाटक में निभाई हैं हर भूमिका के लिए अलग - अलग पोशाक है. स्त्री भी एक बार साड़ी बदलती है थोड़ा सा पाउडर लगाती है. एक माला टूट जाने पर दूसरा पहनती है.

'आधे-अधूरे 'में ध्वनि योजना का बड़ा सार्थक प्रयोग किया गया है. इस नाटक में प्रयोग की गयी ध्वनियाँ पात्रों की मनोदशा तथा परिवेश में व्याप्त त्रासदी तथा घुटन का चित्रण समग्रता से करती है. ध्वनि नाटक के लिए बहुत महत्त्व पूर्ण होती हैं. डॉ. केदारनाथ सिंह ने भी माना है कि नाटक को स्थापित करने, रंग प्रस्तुति को स्वाभाविक, आकर्षक और सम्मोहक बनाने में ध्वनि योजना महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है. ध्वनियाँ जैसे अशोक की कैंची की ध्वनि, टिनकटर, कप-प्लाटों की या महेन्द्रनाथ के फाइल झटकने की आवाजें आदि जो एक ऐसा वातावरण निर्मित करती हैं जिसमें चरित्रों की आंतरिकता मुँह से बोलने की अपेक्षा अधिक मुखर हो उठती है. राम गोपाल बजाज के अनुसार आधे-अधूरे नाटक के लिए मोहन राकेश द्वारा प्रयुक्त ध्वनि योजना ही सबसे बेहतर है, भले ही उन्होंने निर्देशक व संगीतकार को प्रयोग के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया हो. "पहले अंक के अंत के लिए पात्रों के परस्पर अलगाव और उनके संबंधों के काट-कटकर बिखरने को अभिव्यक्त करने के लिए हमने कई दिनों तक संगीत के कई-कई प्रयोग देखें. परन्तु अंत में पाया की उस स्थिति में कैची कि चक-चक से बेहतर और कोई ध्वनि-प्रभाव संभव नहीं है और अंततः उसे ही रखा भी गया."[9] स्त्री के इस फैसले के बाद की ' अब वह इस घर के लिए कुछ नहीं करेगी' के साथ ही एक संगीत उत्पन्न होता है- "एक खंडहर की आत्मा को व्यक्त करता हल्का संगीत." [10] नाटक के अंत में भी एक संगीत की ध्वनि है जो नाटक समाप्ति के साथ-साथ कुछ और छोड़ जाता है जो दर्शक के मन पर छाया रहता है. 'हल्का मातमी संगीत उभरता है.....उन दोनों के आगे बढ़ने के साथ संगीत अधिक स्पष्ट और अँधेरा अधिक गहरा होता जाता है." [11] संवाद-योजना नाटक का प्राणतत्व होता है. प्रथम दृष्टया इसकी कथा स्पष्ट नहीं होती परन्तु जैसे-जैसे संवाद आगे बढ़ते है कथा कुछ स्पष्ट होने लगती है. 'आधे-अधूरे 'की संवाद योजना विशिष्ट है. संवाद छोटे, सरल, और प्रभावी है. संवाद भी नाटक के शीर्षक की ही तरह 'आधे-अधूरे 'हैं जिससे बात पूर्णतया स्पष्ट नहीं होती है और प्रेक्षक के मन में उत्सुकता बनी रहती है. स्त्री और पुरुष चार के बीच के संवाद ऐसे ही हैं-

पुरुष चार*:* मैं जनता हूँ सावित्री, कि तुम मेरे बारे में क्या-क्या सोचती और कहती हो*.....*

स्त्री*:*" जरूर जानते होंगे*.....* लेकिन फिर भी कितना कुछ है जो सावित्री किसी से नहीं कहती. "

पुरुष चार*:* जैसे?

स्त्री*:* जैसे*.....*पर बात तो आप करने आये हैं. [12]

इसी तरह के आगे के संवाद भी हैं जो अधूरे से लगते हैं, परन्तु इन्हीं द्वारा स्थितियां धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगती है. नाटक में संवाद अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं. संवाद पत्रों के चरित्र, कथावस्तु तथा उद्धेश्य को अग्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं-

स्त्री*:* " पता नहीं यह क्या तरीका है इस घर का*?* रोज आने पर पचास चीजें यहां-वहां बिखरी मिलती हैं.

पुरुष एक*:* लाओ मुझे दे दो.

स्त्री*:* (पाजामें को को झाड़कर फिर से तहति हुई) अब क्या दे दूँ. पहले खुद भी तो देख सकते थे. [13]

इसी प्रकार स्त्री और बड़ी लड़की के बीच का संवाद, बड़ी लड़की और लड़के का संवाद आदि पात्रों की मनःस्थिति तथा परिस्थितियों की त्रासदी को स्पष्ट करती है.

पात्रों की रचना भी मोहन राकेश ने बड़ी सजगता से किया है. नाटक के केंद्र में स्त्री है जिसका नाम है सावित्री. वह नौकरीपेशा स्त्री है घर की सारी जिम्मेदारी उसी पर है इससे उसके चेहरे पर तनाव भी

दिखाई देता है. महेंद्र नाथ निकम्मा है और नाटक में भी हम पाते हैं, कि वह कैसे अपनी जिम्मेदारी से बचने के लिए का प्रयत्न करता रहता है, बड़ी लड़की जिसके व्यक्तित्व में एक बिखराव है, छोटी लड़की बद्तमीज़ है और लड़का विद्रोही प्रवृत्ति का है जो बिलकुल अपने पिता के जैसा है. वह नौकरी नहीं करना चाहता और जब लोग उसके घर आते हैं तो इसे बुरा लगता है. कुल मिलाकर पात्र कथावस्तु को स्पष्ट करने में सहायक है.

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है अतः नाटककार को ऐसी भाषा का प्रयोग चाहिए जो उसकी अनुभूति को भलीभांति व्यक्त करने में सफल हो सके. मोहन राकेश एक सफल नाट्यशिल्पी थे. 'आधे-अधूरे' की भाषा इतनी सरल और आम बोलचाल की होने से हर प्रकार का दर्शक इस नाटक का आनंद उठा सकता था और यही कारण था कि यह नाटक जहाँ-जहाँ भी खेला गया, बहुत ही सफल हुआ. इस नाटक की भाषा सादी -सच्ची और एक सामान तनाव-भरी है. श्री ओम शिवपुरी के अनुसार, "पहले वाचन के समय ही मुझे इसकी भाषा में बड़ी कशिश लगी थी. कहना न होगा कि इस नाटक की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है. इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके. शब्दों का चयन, उनका क्रम, उनका संयोजन- सबकुछ ऐसा है जो बहुत सम्पूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता है. लिखित शब्द की यही शक्ति और उच्चारित ध्वनि-समूह का यही बल है, जिसके कारण यह नाट्य- रचना बंद और खुले, दोनों प्रकार के मंचों पर अपना सम्मोहन बांये रख सकी."[14] इसमें एक ओर जहाँ बोलचाल की भाषा की बुनावट है, वहीँ दूसरी ओर सहज प्रवाह एवं स्वतः स्फूर्तता भी है. अनुभूति की सूक्ष्मता को प्रकट करने वाले ध्वनि और मौन के समन्वय की गहरी समझ रखने वाला एवं श्रेष्ठ रचनाकार ही वह उपलब्ध करा सकता है, जो मोहन राकेश ने किया है.

अतः कहा जा सकता है कि 'आधे-अधूरे' में रंगमंचीयता के सभी गुण विद्यमान हैं जिसके कारण नाटक में निहित मूल कथ्य दर्शकों तक बिना रुकावट पहुँचते हैं. नाटक को पढ़ते या देखते समय प्रत्येक पाठक या दर्शक को स्वयम के दर्शन होते है, यह रंगभाषा के कारण ही संभव है. नाटक प्रेक्षकों पर अपना अमिट प्रभा व छोड़ने में समर्थ है. ओम शिवपुरी के शब्दों में, "एक निर्देशक की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' मुझे समकालीन जिंदगी का पहला सार्थक हिंदी नाटक लगता है. यह मौजूदा जीवन की विडम्बना के कुछेक सघन बिंदुओं को रेखांकित करता है. इसके पात्र, स्थितियां एवं मनःस्थितियाँ यथार्थपरक तथा विश्वसनीय हैं. इसका गठन सुदृढ़ एवं रंगोपायुक्त है. पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान रंग-प्रभावों की दृष्टि से भलीभांति संयोजित हैं. पूरे नाटक की अवधारणा के पीछे सूक्ष्म रंग-चेतना निहित है. [15]

सन्दर्भ - ग्रन्थ सूची

1. मोहन राकेश - आषाढ़ का एक दिन, भूमिका, राजपाल एंड सन्स, २०१६
2. आधे-अधूरे - मोहन राकेश, निर्देशक का वक्तव्य, पृ. ***vii*** , राधाकृष्ण प्रकाशन, २००८
3. मोहन राकेश और उनके नाटक - गिरीश रश्तोगी, पृ. १७, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००८
4. आधे-अधूरे - मोहन राकेश पृ. ५७, राधाकृष्ण प्रकाशन, २००८
5. आधे-अधूरे - मोहन राकेश पृ. ७१, राधाकृष्ण प्रकाशन, २००८
6. आधे-अधूरे - मोहन राकेश पृ. ७३, राधाकृष्ण प्रकाशन, २००८
7. मोहन राकेश और उनके नाटक - गिरीश रश्तोगी, पृ. १७, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००८
8. आधे-अधूरे - मोहन राकेश पृ. ***ix***, राधाकृष्ण प्रकाशन, २००८
9. मोहन राकेश *:* रंग-शिल्प और प्रदर्शन - डॉ. जयदेव तनेजा, पृ. २३५, राधाकृष्ण प्रकाशन
10. आधे-अधूरे - मोहन राकेश पृ. ५६, राधाकृष्ण प्रकाशन, २००८
11. आधे-अधूरे - मोहन राकेश पृ. ९६, राधाकृष्ण प्रकाशन, २००८
12. आधे-अधूरे - मोहन राकेश पृ. ८४, राधाकृष्ण प्रकाशन, २००८
13. आधे-अधूरे - मोहन राकेश पृ. १५, राधाकृष्ण प्रकाशन, २००८
14. आधे-अधूरे - मोहन राकेश, निर्देशक का वक्तव्य, पृ. ***v*** , राधाकृष्ण प्रकाशन, २००८
15. आधे-अधूरे - मोहन राकेश, निर्देशक का वक्तव्य, पृ. ***v*** , राधाकृष्ण प्रकाशन, २००८